मूर्धन्य इतिहासकार
सैयद हसन अस्करी

बिहार की धरती पर कुछ ऐसे विलक्षण लोग जनमे, जो अपने जीवनकाल में ही जीते-जी अनेक कथा-कहानियों के पात्र बन गए। ऐसे ही विलक्षण एवं अद्‌भुत लोगों में एक हैं—पद्‌मश्री सैयद हसन अस्करी। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इतिहासकार, पुरातत्त्वविद्, धुनी गवेषक और संत स्वभाव के स्वामी हसन अस्करी अपनी साइकिल, गाय, बकरी, सिनेमा और पुस्तकालय प्रेम के कारण जीते-जी किंवदंती बन चुके थे। वह एक चलते-फिरते एन्साइक्लोपीडिया थे। पटना की किस गली, किस मोहल्ले, किस कुएँ और किस मंदिर या मसजिद का नामाकरण कैसे हुआ तथा इसका उल्लेख किस किताब में है, इसकी प्रामाणिक जानकारी वे सहज ही दे देते थे।

उनका जन्म 1 सितंबर, 1901 को सीवान जिले के खुजवा गाँव में एक मध्यवर्गीय शिक्षित जमींदार परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सैयद रजी हसन था। उनके पूर्वज तेरहवीं सदी के बुखारा (मध्य

एशिया) से भारत आए थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही परंपरागत ढंग से हुई। 1918 में उन्होंने जिला स्कूल छपरा से प्रवेशिका परीक्षा पास की। पढ़ने में वह इतने तेज थे कि उन्हें इस परीक्षा में न सिर्फ प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई, बल्कि प्रथम स्थान भी प्राप्त किया। उन्हें डिस्ट्रिक्ट जूनियर स्कॉलरशिप भी मिली। 1922 में उन्होंने मुजफ्फरपुर स्थित ग्रियर भूमिहार ब्राह्मण कॉलेज (अब भगत सिंह कॉलेज) से बी.ए. की परीक्षा पास की। फिर 1924 में पटना विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। अगले वर्ष पटना विश्वविद्यालय से बी.एल. (एल-एल.बी.) की परीक्षा पास करने के उपरांत उन्होंने वकालत शुरू की, लेकिन इस कार्य में उनका मन नहीं रमा और 2 जुलाई, 1926 को पटना स्थित एक कॉलेज में अध्यापन कार्य शुरू किया। अगले वर्ष वह प्रतिष्ठित पटना कॉलेज में इतिहास के व्याख्याता बन गए।

सन् 1928 की एक घटना ने उनके जीवन की धारा ही बदल दी। हुआ यों कि एक दिन पटना कॉलेज के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ. सुविमल चंद्र सरकार ने उन्हें अपने रानीघाट आवास पर बुलाया और एक नौजवान से परिचय कराते हुए कहा, "यह कलकत्ता से आए हैं और बिहार-उड़ीसा सरकार के रिसर्च स्कॉलर के रूप में मेरे साथ पी-

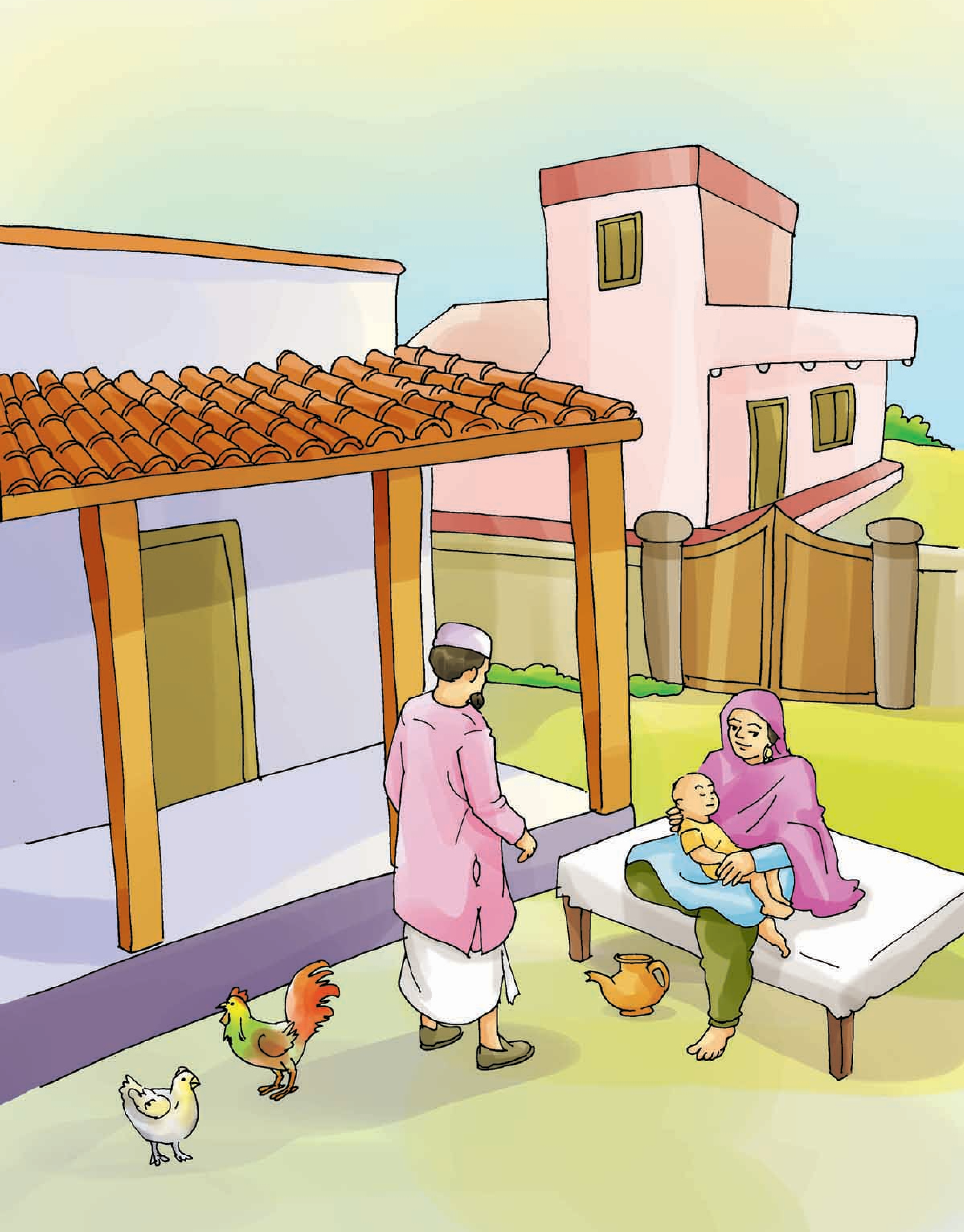

एच.डी. करेंगे। आप खुदाबक्श खाँ लाइब्रेरी में पर्सियन पांडुलिपि पढ़ने में इनकी मदद कीजिए।'' कहा जाता है कि काली किंकर दत्त को पर्सियन पांडुलिपि पढ़ने में मदद पहुँचाने के क्रम में हसन अस्करी को पुरानी पांडुलिपियों में ऐसी रुचि जगी, जो जीवन-पर्यंत बनी रही। 1936 में वह स्वयं शोध की दुनिया में रम गए। इसी दौरान 2 जुलाई, 1934 को वह बिहार शिक्षा सेवा श्रेणी-2 में शामिल किए गए। बाद में 13 जुलाई, 1950 को उनकी प्रोन्नति बिहार शिक्षा सेवा श्रेणी-1 में हुई और इसी रूप में उन्होंने सितंबर, 1956 में अवकाश ग्रहण किया। कुछ ही दिनों बाद विश्वविद्यालय अनुदान (सेवा) आयोग द्वारा अवकाश प्राप्त शिक्षकों को आर्थिक सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से बनी योजना के तहत उनकी पुनर्नियुक्ति पटना विश्वविद्यालय में हो गई और इस तरह वह 1974 तक पटना विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य से जुड़े रहे।

उन्होंने 1 मार्च, 1962 से 15 मई, 1969 तक काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना के निदेशक के रूप में भी कार्य किया और अनेक वर्षों तक खुदाबक्श ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना की संचालन समिति के सदस्य भी रहे। वह बिहार रिसर्च सोसाइटी की काउंसिल तथा पटना विश्वविद्यालय सीनेट के भी सदस्य रहे।

हसन अस्करी भारतीय इतिहास कांग्रेस (इंडियन हिस्टरी

कांग्रेस) से भी विभिन्न रूपों में जुड़े रहे। इस संस्था से वह पहली बार 1938 में जुड़े और इलाहाबाद में आयोजित दूसरे अधिवेशन में भाग लिया। 1947 में उन्होंने इसके मध्यकालीन इतिहास खंड का सभापतित्व किया। 1968 में वह इसके जनरल प्रेसीडेंट चुने गए, परंतु उन्होंने विनम्रतापूर्वक इस गरिमापूर्ण पद को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। वह 1938 से ही इंडियन हिस्टोरिकल रेकाड्र्स कमीशन तथा रीजनल रिकाड्र्स सर्वे कमेटी के स्थापना काल से उसके सक्रिय सदस्य रहे। इनकी पत्रिकाओं में वे अकसर शोधपत्र और अन्वेषण रिपोर्ट लिखा करते तथा इनकी बैठकों में नियमित हिस्सा लेते। वह 1962–66 तक इसके मानद सचिव तथा 1981 से 88 तक मानद अध्यक्ष भी रहे। उनकी मुख्य भूमिका शोधकर्ता और अन्वेषक की ही थी।

उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अक्षुण्ण शोध–सामग्री की खोज में लगा दिया। इसके लिए वह अकसर सुदूर गाँव–देहात की यात्राएँ भी करते रहे। फारसी पांडुलिपियों के स्रोत के जानकार के रूप में उनकी कोई बराबरी नहीं कर सका। उन्होंने 150 से अधिक मानक शोधपत्र लिखे, जो विभिन्न राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय जर्नल्स में प्रकाशित हुए। उन्होंने मुख्यत: अंग्रेजी में ही लेखन कार्य किया, परंतु कुछ रचनाएँ उर्दू

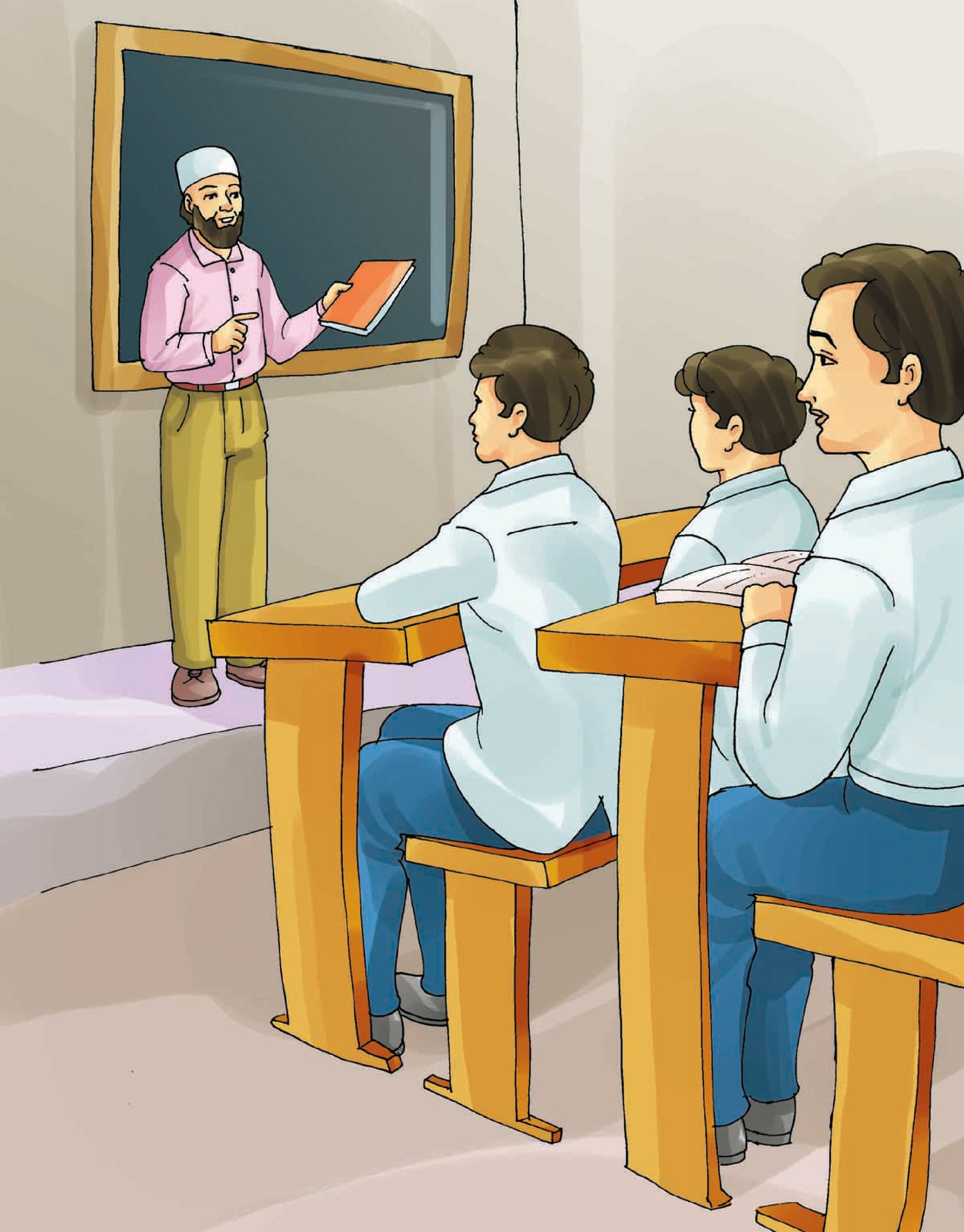

में भी मिलती हैं।

हसन अस्करी ने अनेक ग्रंथों और पुस्तकों की रचना की, जो ज्यादातर शोधपत्रों के संकलन हैं। इनमें प्रमुख हैं—कॉम्प्रिहेंसिव हिस्टरी ऑफ बिहार (पटना-1983), ऑस्पेक्ट्स ऑफ द कल्चरल हिस्टरी ऑफ मेडियवल बिहार (काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना-1986), तबकाते बाबरी (अंग्रेजी अनुवाद, ईदराह-ए-अदाबियत, नई दिल्ली-1982), शाहनामा मुनौबर कलाम (अंग्रेजी अनुवाद, पटना-1980), शाहनाज मुनौबर कलाम (पर्सियन टेक्स्ट, पटना-1968), फोर्ट विलियम इंडिया हाउस कॉरेस्पॉण्डेंस 1787-91 (नई दिल्ली-1976), इकबालनामा बाई एन एनालिसस कंटेंपरेरी राइटर (पटना-1983), मुक्तुब ऐंड महफूज लिटरेचर (1981), इसलाम ऐंड मुसलिम्स इन मेडियवल बिहार (1989), मेडियवल बिहार : सल्तनत ऐंड मुगल पीरियड (1990), अमीर खुसरो एज ए हिस्टोरियन (1992), तबकाते बाबरी ऑफ शेख जैनुद्दीन ख्वाफी (1993)।

उन्होंने अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित 'मेडियवल इंडिया' (त्रैमासिक) का भी संपादन किया। वह लंबे समय तक इस त्रैमासिक से सह-संपादक के रूप में जुड़े रहे। हसन अस्करी की खोजों और शोध से कई प्रकार से बिहार की दशा और दिशा बदल गई। इख्तिसान

देहलवी की दुर्लभ कृति 'बसातीन-उल-उनस' की खोज भारतीय इतिहास को उनकी अद्भुत देन है। इस लेखक का वास्तविक नाम मुहम्मद सदरे आला अहमद हसन दाबीर था, जो दिल्ली दरबार में था। इस खोज से बिहार के इतिहास निरूपण में काफी मदद मिली। इसमें गयासुद्दीन तुगलक के तिरहुत विजय का विस्तृत विवरण है। वस्तुतः यह आँखों देखा विवरण है। इसी तरह उन्होंने 1938 में पटना सिटी के शेख अली हाजिन (फारसी कवि) की पांडुलिपि की खोज की। इस पांडुलिपि से ज्ञात होता है कि 18वीं सदी में पटना सांप्रदायिक सौहार्द का एक उत्तम उदाहरण था।

हसन अस्करी को उनकी विद्वत्ता और खोजपूर्ण कार्यों के लिए अनेक सम्मान और उपाधियों से अलंकृत किया गया। 1943 में ब्रिटिश हुकूमत ने उन्हें 'खान साहब' की पदवी से नवाजा। 1985 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' सम्मान से विभूषित किया। 1967 में मगध विश्वविद्यालय बोधगया और 1984 में पटना विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की। यह उनके जीवन का एक सुखद संयोग था कि उन्हें देश के तीन-तीन राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद, नीलम संजीव रेड्डी और ज्ञानी जैल सिंह के हाथों से सम्मानित होने का सुअवसर हासिल हुआ। उन्हें नेशनल हिस्टरी

कांग्रेस ने 1987 के गोवा कॉन्फ्रेंस में तथा 1990 में बिहार पुराविद् परिषद् ने भी इतिहास-पुरातत्त्व के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए सम्मानित किया।

तमाम विद्वत्ता और उपलब्धियों के बावजूद वह हमेशा जिज्ञासु और शोधप्रज्ञ छात्र ही बने रहे। उनके बारे में कहा जाता है कि शायद ही किसी लाइब्रेरी को अस्करी साहब जैसा कोई दूसरा आगंतुक (विजिटर) मिला हो, जितना खुदाबक्श ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी को अस्करी साहब के रूप में मिला। चिलचिलाती धूप हो, कँपकँपाती सर्दी या फिर मूसलधार बारिश, उनका लाइब्रेरी जाना शायद ही कभी रुका हो। वह अपने जाननेवालों को अकसर कहा करते थे—"जिस दिन मेरा लाइब्रेरी आना बंद हो जाए, समझना मेरी इहलीला समाप्त होनेवाली है।" लाइब्रेरी से उनके प्रेम को उनका इलाज करनेवाले चिकित्सक भी जानते थे; इसलिए उन्होंने भी कभी उन्हें लाइब्रेरी जाने से नहीं रोका। वह बीमारी की अवस्था में भी नियमित रानीघाट आवास से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर स्थित खुदाबक्श लाइब्रेरी चले आते। लाइब्रेरी प्रेम के साथ-साथ उनकी गौ-भक्ति, बकरी पालना, सिनेमा देखना और 80 वर्ष की अवस्था में साइकिल की सवारी भी लोगों के लिए कौतूहल के विषय हुआ करते थे। अध्ययन-अध्यापन से समय

निकालकर वे सिनेमा देखने जरूर जाया करते थे। इसी तरह अपनी गाय और बकरी के लिए हरी पत्तियाँ इकट्ठा करना उनकी दिनचर्या में शामिल था। पांडुलिपियों के प्रति वह इतने सतर्क रहते थे कि सड़क पर गिरा हुआ कोई कागज का टुकड़ा भी वह रुककर जरूर देख लेते कि शायद वह किसी पांडुलिपि का अवशेष न हो।

ऐसे विलक्षण इतिहासकार प्रो. सैयद हसन अस्करी का लगभग 90 वर्ष की आयु में 28 नवंबर, 1990 को पटना में निधन हो गया। उन्होंने अपनी वसीयत में अपने श्राद्ध पर होनेवाले खर्च की मनाही कर रखी थी। उनकी इच्छा थी कि उनके श्राद्ध पर होनेवाले खर्च से किसी अनाथ बच्चे की मदद की जाए। उन्होंने अपनी विद्वत्ता से ही नहीं, बल्कि मानवता की सेवा से भी अद्‌भुत उदाहरण पेश किए।